अष्टपाहुड़। दर्शनपाहुड की तीसरी गाथा। तीसरी, तीसरी।

***भावार्थ* – जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं, उन्हें भ्रष्ट कहते हैं...** यह सम्यग्दर्शन का जोर बताना है। जिनमत की श्रद्धा अथवा... जिनमत का आया है न? जिनकी मुद्रा निर्ग्रन्थ... बाह्य में दिगम्बर हैं। अन्दर में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतराग मुद्रा अन्दर प्रगट हुई है, उन्हें यहाँ जैनमत कहा जाता है। वह जैनदर्शन है। अन्तर स्वरूप सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और पंच महाव्रत के विकल्प आदि हों, नग्न दिगम्बरदशा (हो), वह जैनदर्शन है। उससे जो भ्रष्ट है, वह भ्रष्ट है। दो बार लिया है न? **दंसणभट्ठा भट्ठा** जोर तो यहाँ देना है।

और जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं,... सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट नहीं है। अर्थात्?—कि आत्मा की उपलब्धि अनुभव है। समझ में आया? विषय में सुखबुद्धि नहीं। ब्रह्मचर्य बहुत करता है परन्तु उसमें उसे हितबुद्धि या सुखबुद्धि नहीं है। **जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं, किन्तु कदाचित् कर्म के उदय से चारित्रभ्रष्ट हुए हैं,...** कदाचित् चारित्र हो और इस प्रकार से चारित्र की दशा मुनि की वीतरागी दशा दिगम्बर मुद्रा उस प्रकार की न रह सके। कर्म का उदय तो निमित्त लिया है परन्तु पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण चारित्र में न रह सके **उन्हें भ्रष्ट नहीं कहते;...** यह तो तपश्चर्या-बपश्चर्या की बाकी वास्तव में **सिज्झंति चरियभट्ठा** ऐसा लिया है न? चारित्र भ्रष्ट है। परन्तु दर्शन (भ्रष्ट) है, वह भ्रष्ट में भ्रष्ट है। समझ में आया? वीतरागस्वरूपी आत्मा की दृष्टि ज्ञान और रमणता, वह तो यथार्थ वह तो उस प्रकार की अन्दर प्रतीति, अनुभव तो यथार्थ है। समझ में आया? परन्तु चारित्र की

दशा (नहीं रही)। (ऐसे मार्ग की) श्रद्धा यथार्थ कहने में आयी है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी पर्याय हो, ऐसे मार्ग की श्रद्धा सम्यग्दर्शन के अनुभव में है और स्वरूपाचरण का आनन्द तथा स्वरूपाचरण का चारित्र भी है। वह यहाँ चारित्र गिनना नहीं है। समझ में आया?

कदाचित् सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हुआ नहीं अर्थात् अनुभव में आनन्दस्वरूप है, आत्मा ध्येय दृष्टि में है, उसे स्वरूप का आचरण सम्यग्दर्शन और स्वसंवेदन ज्ञान वर्तता है तो वह सम्यक्त्व से भ्रष्ट नहीं है। भले चारित्र भ्रष्ट हो। समझ में आया? ब्रह्मचर्य आदि में दोष लगता हो, चारित्र न हो। तो कहते हैं कि उसे भ्रष्ट नहीं कहते। यहाँ तो ऐसा है। अधिक तो यह चलता था।

यहाँ तो **भ्रष्ट नहीं कहते;...** ऐसा है न? मूल भ्रष्ट नहीं। मूल तो ऐसे भ्रष्ट तो है परन्तु **सिज्झंति चरियभट्ठा** वापस तीसरे पद में लिया है न? चारित्र भ्रष्ट है, परन्तु मूल भ्रष्ट नहीं। मूल अर्थात्? चारित्र ऐसा ही होता है, सम्यग्दर्शन का अनुभव, आत्मा के अनुभव की दशा, आनन्द के स्वसंवेदन की प्राप्ति से भ्रष्ट नहीं है। देवचन्दजी! समझ में आया? **उन्हें भ्रष्ट नहीं कहते;...** कहते हैं। ब्रह्मचर्य का... और चारित्र का नाश हो। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट नहीं तो यहाँ कहते हैं कि उसे वास्तव में भ्रष्ट नहीं कहा जाता। भ्रष्ट है सही, परन्तु वास्तव में अर्थात् मूल में भ्रष्ट हो गया है, ऐसा नहीं है। उसके अन्तर में अनुभव में प्रतीति वर्तती है कि चारित्र तो ऐसा होता है। वीतरागी चारित्र दिगम्बर मुद्रा / दशा। समझ में आया? तीन कषाय का अभाव, वह चारित्र है। ऐसी प्रतीति और अनुभव में अन्तर (में) वर्तता है, और जिसका ध्येय विषय नहीं है, तथापि विषय से गिर गया है, चारित्र से। समझ में आया? ध्येय विषय नहीं। ध्येय तो द्रव्यस्वभाव आनन्द है, वह ध्येय है। वह ध्येय छूटता नहीं। पण्डितजी!

कहते हैं, **जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं, किन्तु कदाचित् कर्म के उदय से चारित्रभ्रष्ट हुए हैं, उन्हें भ्रष्ट नहीं कहते;...** अन्दर अस्थिरता हो गयी है परन्तु फिर भी वह वास्तव में प्रतीति और सम्यक् अनुभव में आत्मा की प्राप्ति ही, इसमें उसे सन्देह नहीं कि मैं चारित्रवन्त हूँ, ऐसा सन्देह नहीं। सन्देह निकल गया है। नि:सन्देह मैं चारित्ररहित हूँ। समझ में आया? नीचे ऐसा लेख है, देखो!

मुमुक्षु : यहाँ तो ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें भी कहाँ खबर है ?

यहाँ कहते हैं, मूल सुरक्षित है न ? वृक्ष के पत्ते-बत्ते टूट गये हैं परन्तु मूल सुरक्षित है तो वापस पत्ते उगनेवाले हैं, उग जाएँगे। परन्तु जिसके पत्ते रहे और मूल नाश हुआ तो वे पत्ते सूख जाएँगे। इसी प्रकार जिसका मूल चैतन्यद्रव्य जहाँ ध्येय में है, पूर्ण आनन्द की निर्विकल्प प्रतीति और अनुभव है, ऐसी अनुभव दशा का मूल सम्यग्दर्शन सच्चा है। समझ में आया ? उसमें विषय का त्याग किया था, चारित्र था और चारित्र से कदाचित् भ्रष्ट होता है। श्रेणिक राजा जैसे को चारित्र नहीं था। यहाँ समकित था, तो भी कहते हैं कि वह दर्शन भ्रष्ट नहीं है, इसलिए भ्रष्ट नहीं है। चारित्रभ्रष्ट कदाचित् हो, इसलिए उसे भ्रष्ट में भ्रष्ट है - ऐसा नहीं कहा जाता। समझ में आया ? लोगों का पूरा झुकाव दूसरा है। बाह्य के व्रत और त्याग का पूरा वजन है। वह वजन झूठा है, ऐसा बतलाना है।

पंचाध्यायी में लिया है। नहीं ? समकित के अधिकार में बहुत लिया है। दर्शनमोह का उदय नहीं, जहाँ सम्यग्दर्शन है, वह चारित्रमोह का उदय हो और समकित को दोष करे, वह एक गुण का दूसरा गुण कार्य करे, ऐसा नहीं बन सकता। बहुत लम्बी बात है। आँख का दृष्टान्त दिया है। एक आँख बिगड़ गयी, इसलिए दूसरी आँख में बिगाड़ होवे ही और बिगड़ती है, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ? एक आँख बिगड़ी, इसलिए दूसरी आँख बिगड़ी है—ऐसा है ? इसी प्रकार चारित्र में स्वरूप की रमणता उग्ररूप से जो स्थिरता की, आनन्ददशा की उग्रता थी, उससे हट गया परन्तु सम्यग्दर्शन में से च्युत नहीं हुआ तो उसे वास्तव में भ्रष्ट नहीं कहा जाता। ऐसा है। मूलमार्ग हाथ में रखकर मूल हाथ में रखा है। आहाहा! अन्त-र्बाह्य पड़े। कहते हैं कि वह जैनदर्शन से भ्रष्ट हुए। फिर भले वह महाव्रत और बाहर की क्रिया हो, परन्तु वह भ्रष्ट में भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं।

यहाँ बाह्यक्रिया का लिया न ? अन्तरंग सम्यग्दर्शन बिना बाह्यचारित्र, पंच महाव्रत के परिणाम की क्रिया तो करते थे। सम्प्रदाय में से छूटे... समझ में आया ? अनादि सनातन दिगम्बर दर्शन जो था, उसमें से छूटे और दूसरा सम्प्रदाय खड़ा किया। बाहर के क्रियाकाण्ड और व्यवहार के व्रतादि उस प्रकार के थे परन्तु सच्ची श्रद्धा से भ्रष्ट हुए, वे भ्रष्ट में भ्रष्ट हैं, कहते हैं। समझ में आया ? और जिसे यह दृष्टि, दिगम्बर दर्शन यथार्थ तीन कषाय का

अभाव, वह मुनिपना है, वही दर्शन है, वही जैनदर्शन का मूल है, ऐसी जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन की श्रद्धा अनुभव प्राप्त हुए हैं, आनन्द के अनुभव का वेदन भी चालू है, ऐसा कहते हैं। तथापि वह चारित्र की दशा जो उग्र थी, उसमें से नीचे आ गया तो उसे भ्रष्ट में भ्रष्ट है – ऐसा नहीं कहते, यह कहते हैं। समझ में आया? और बाहर में पंच महाव्रत तथा क्रियाकाण्ड बराबर रखता हो, नग्न मुनि होकर, दिगम्बर होकर पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (पालन करता हो) परन्तु अन्दर सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है। उस राग के परिणाम से धर्म होता है, राग की एकता है और उससे धर्म होता है, ऐसी मान्यता है, कहते हैं कि वह दर्शन भ्रष्ट है, फिर चारित्र का बाहर का व्रत का व्यवहार भले हो, परन्तु वह दर्शन से भ्रष्ट है, वह भ्रष्ट में भ्रष्ट है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती;... सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं, उनकी मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? **सिज्झंति चरियभट्ठा** भाषा देखो न! चारित्र भ्रष्ट सिद्ध होंगे... क्योंकि उनकी दृष्टि में, अनुभव में चारित्र ऐसा होता है, वह चारित्र मेरे पास नहीं है, परन्तु सम्यग्दर्शन की भूमिका में दृढ़ चारित्र की ऐसी दशा होती है, ऐसी श्रद्धा और ज्ञान उन्हें वर्तता है और अनुभव, आत्मा के पूर्ण स्वरूप की प्रतीति और सम्यक्त्व की दृढ़ता पक्की वर्तती है।

तो कहते हैं, **जो चारित्र से भ्रष्ट होते हैं और श्रद्धानदृढ रहते हैं...** श्रद्धा अर्थात् इसकी, हों! वापस वह श्रद्धा अकेली ऐसा नहीं। स्वरूप की प्राप्ति की प्रतीति और स्वरूप का अनुभव है, उसमें विषय के सुख की बुद्धि (तथा) प्रेम जरा भी नहीं है। समझ में आया? विषय का अशुभराग-भोग में प्रेम नहीं है, रुचि नहीं है, किन्तु वे परिणाम आये, इसलिए वह चारित्र से भ्रष्ट हुआ परन्तु वह चारित्र से भ्रष्ट हुआ, वह सीझेगा, उसकी मुक्ति होगी, क्योंकि उसकी प्रतीति और अनुभव में है कि अरे! यह बात ऐसे नहीं होती। हें? कुछ बचाव करे कि इसमें क्या दिक्कत है? चारित्र न हो तो। समझ में आया? ऐसा नहीं है। बचाव नहीं करता। पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण चारित्र की दशा नहीं कर सकता या चारित्र की दशा थी, उसमें से हट गया है। दोनों।

श्रेणिक राजा, वह छहढाला में डाला था। क्या कहलाता है? श्रेणिक राजा को चारित्र नहीं था। सम्यग्दर्शन दृढ़ पक्का था। तीर्थंकर होंगे। अभी नरक में गये हैं, भविष्य

में होंगे। मिथ्यादृष्टि दर्शन से भ्रष्ट है, वह पंच महाव्रतादि पालन करता हो तो भी क्रम-क्रम से नरक और निगोद में जानेवाले हैं। समझ में आया? ...दर्शनपाहुड़ में।

चारित्र से भ्रष्ट होते हैं... अन्दर चारित्र से भ्रष्ट हो। स्वरूप की स्थिरता से। वहाँ तो बाह्य से चारित्र भ्रष्ट हो, ऐसा लिया है परन्तु अन्तर से भ्रष्ट हो **और श्रद्धानदृढ रहते हैं...** पक्की प्रतीति अनुभव में (रहती है) ओहो! आत्मा तो पूर्णानन्द पूर्ण केवलज्ञान और केवल आनन्द को प्रगट करने की खान है। उसमें से आनन्द और शान्ति प्रगट होगी। विषयसुख में शान्ति नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जगत को यह समझना...

'माघव' यह क्या कहा? माघनन्दि की बात नहीं? ज्ञान पक्का था, अर्थात् सम्यग्दर्शन था, हों! ज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान, ऐसा भी नहीं। अकेला ज्ञान तो... आगे कहेंगे, चौथे में ही कहते हैं, देखो न! ...अकेला ज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शनवाला ज्ञान नहीं। अकेला ज्ञान। परन्तु जिसे सम्यग्दर्शनसहित का ज्ञान है, वह चारित्र से कदाचित् भ्रष्ट हुआ है तो भी वह चारित्र में आ जाएगा। समझ में आया? ज्ञानसहित की बात वहाँ ली है न? ज्ञान में शील नहीं होता। शील अर्थात्? मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अभावरूपी अन्दर आचरण नहीं होता, वह ज्ञान ज्ञान ही नहीं है। उसके साथ सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? अकेला ज्ञान... दृष्टान्त दिया है न इसका? रुद्र -शंकर। नव पूर्व का पढ़ा हुआ, ग्यारह अंग का पढ़ा हुआ। ज्ञान था, परन्तु वह ज्ञान कैसा? समकितसहित का नहीं। आहाहा! समझ में आया? विषय में भ्रष्ट होकर गति बदल गयी।

जिसे ज्ञान सम्यग्दर्शनसहित का भान है, आत्मा निर्विकल्प अनुभव आनन्द का कन्द है, उसमें राग की अंश की गन्ध भी नहीं है और आत्मा के अतिरिक्त सुख और शान्ति तीन काल-तीन लोक में पुण्य के भाव में भी सुख और शान्ति नहीं है। ऐसी दृढ़ अनुभवदृष्टि हो, वर्तती हो, उसे यहाँ श्रद्धा दृढ़ रहे, ऐसा कहने में आता है।

उनके तो शीघ्र ही पुनः चारित्र का ग्रहण होता है... जिनकी श्रद्धा में दृढ़ता है कि चारित्र तो ऐसा होता है परन्तु मेरे पास चारित्र नहीं है। मैं सम्यग्दर्शन और ज्ञान में पक्का दृढ़ हूँ। ऐसा जिसे अनुभव वर्तता है, वह चारित्र से कहते हैं, गिर गया हो या चारित्र वर्तमान में नहीं हो तो भी सिद्ध नहीं, चारित्र है। पुनः शब्द पड़ा है न? पुनः अर्थात् मानो चारित्र था और गिरा, इसलिए पुनः - ऐसा लिया है। अर्थ में तो भाई ने लिया है। समझ

में आया ? आहाहा ! आत्मा के आनन्द की रमणता में से छूट गया, कहते हैं। रमणता में से। परन्तु फिर भी उसकी रमणता की प्रीति, रुचि जो आनन्द में है, वह वृत्ति और श्रद्धा छूटी नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! दर्शनपाहुड की तीसरी गाथा। **पुन: चारित्र का ग्रहण होता है और मोक्ष होता है...** चारित्र था और चारित्र से गिर गया, चारित्र से रहित हो गया, परन्तु सम्यग्दर्शन दृढ़ रहा। सम्यग्दर्शन अर्थात् ऐसे अकेली श्रद्धा-ऐसा नहीं। वस्तु अखण्ड आनन्द की मूर्ति है, उसकी स्वसंवेदन ज्ञानसहित स्वरूप की प्रतीति वेदन सहित, वह दृढ़ श्रद्धा यदि रही **तो शीघ्र ही पुन: चारित्र का ग्रहण होता है...** फिर से चारित्र लेगा और मोक्ष जाएगा। समझ में आया ? आचार्य स्वयं यहाँ कहते हैं, देखो !

मूलाचार में कहा है न ? मूलाचार में। नहीं ? धर्मी कुसंगी का संग करना नहीं। यह तुझे विपरीतता बैठा देगा। उसका संग करना नहीं। उसकी अपेक्षा तो अकेले न रुचे तो विवाह करना, वहाँ ऐसा कहा है। मुनि विवाह करने का कहेंगे ? कहा है, वह किस अपेक्षा से ? कुसंग से जो मिथ्याश्रद्धा की विपरीतता घुस जाएगी, उसकी अपेक्षा यह दोष थोड़ा है। उतना यह दोष नहीं है, उतना पर से विरक्त रहना, यह बात करना। मिथ्याश्रद्धा की विपरीतता घुसा देगा कि ऐसा होता है, अमुक होता है, अमुक होता है। थोड़ा वस्त्र हो तो मुनि को क्या बाधा है ? परद्रव्य कहाँ बाधक है ? वह तो स्वयं शास्त्रकार नहीं कहते ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कुछ नुकसान नहीं करता। ऐई ! देवचन्दजी ! वस्त्र हो तो भी वस्त्र परद्रव्य है, उसमें मुनिपने को वह क्या नुकसान करे ? ....वे ब्राह्मण कहते थे। घर ले गया था न !

महाराज ! एक ओर कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा हो तो भी नुकसान लगता है। दूसरी ओर कहते हैं कि परद्रव्य नुकसान नहीं करता। वस्त्र कहाँ नुकसान करता है ? वस्त्र रखने का भाव है, वह अचारित्र है। आहाहा ! वस्त्र रखने का भाव है, तिलतुषमात्र भी (परिग्रह रखने का भाव है तो) आचार्य तो ऐसा कहते हैं न ? एक तिलतुषमात्र भी परिग्रह रखने का भाव है और मुनिपना मनवाता है, वह निगोद में जाएगा। समझ में आया ? यहाँ यही कहते हैं कि चारित्र भ्रष्ट हो, परन्तु दर्शन भ्रष्ट नहीं है, वह जीव सीझेगा परन्तु उस श्रद्धा में भ्रष्ट है... समझ में आया ? वस्त्र-पात्र रखे और मुनिपना माने, वह तो श्रद्धा में भ्रष्ट है, नवतत्त्व की श्रद्धा से भ्रष्ट है। आहाहा ! भारी कठिन काम। ऐसा मार्ग है। यह वस्तु का

स्वभाव है। दिगम्बर अर्थात् वस्त्ररहित मुनिपना माने, वह दिगम्बर और वस्त्रसहित माने श्वेताम्बर, वह भी साधु, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वस्त्र रखने का भाव है, वहाँ मुनिपना नहीं होता, ऐसी बात है यहाँ। समझ में आया ? और उसे मुनिपना माने, वह महामिथ्यात्व का दोष है। यहाँ चारित्र है और चारित्र से भ्रष्ट होता है, तथापि समकित का दोष जरा भी नहीं है। ऐई ! समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भाई ! अन्तरवस्तु...

कहते हैं **चारित्र का ग्रहण होता है और मोक्ष होता है... सिज्झंति चरियभट्ठा** की व्याख्या की है। **तथा दर्शन से भ्रष्ट होय उसी के फिर चारित्र का ग्रहण कठिन होता है,...** चारित्र का ग्रहण कैसे होगा ? अभी सम्यक्त्व का ठिकाना नहीं, वह चारित्र को कैसे अनुमोदन श्रद्धान करेगा ? समझ में आया ? दर्शन-श्रद्धा से भ्रष्ट है, जिसके सम्यक्श्रद्धा का ठिकाना नहीं, कहते हैं। उसके चारित्र का ग्रहण कठिन है। **इसलिए निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ होती है।** इनकार किया है न ? ऐसे दुर्लभ है छोड़ो। ऐसा हुआ न ? **सिज्झंति... दंसणभट्ठा ण सिज्झंति... सिज्झंति चरियभट्ठा** निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ है।

जैसे – वृक्ष की शाखा आदि कट जायें... वृक्ष का स्कन्ध। ऊपर से स्कन्ध काटे, डालियाँ काटे, पत्ते टूटे, सब तोड़ डाले। **और जड़ बनी रहे...** उसे मूल सुरक्षित रहे **तो शाखा आदि शीघ्र ही पुनः उग आयेंगे...** फिर डाली, टहनियाँ वापिस पकेंगे और फल सब लायेंगे। **किन्तु जड़ उखड़ जाने पर...** परन्तु यदि मूल उखड़ जाए, फिर भले (वृक्ष) हरा रहा हो परन्तु पन्द्रह दिन, महीने में (सूख जाएगा)। आहाहा ! यहाँ तो सम्यग्दर्शन की क्या कीमत है, (यह समझाते हैं)। और जो श्रद्धा से भ्रष्ट हैं, उसमें उन्हें कितना दोष है, इन दो का विवेक रखना। समझ में आया ? चारित्र भ्रष्ट हुआ, उसका पक्ष नहीं करते, हों ! वापस कोई ऐसा कहे, चारित्र भ्रष्ट का पक्ष करते हैं। अपने पक्षवाला हो और चारित्र भ्रष्ट हो और समकित हो तो उसे बाधा नहीं है, ऐसा नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया ? ऐ.. रमणीकभाई ! लो ! कल सुनने में आया था न ! जैनधर्म और अन्य दर्शन। भगवान ऐसे होते हैं और... कहलाते हैं। अन्तर परमात्मदशा प्रगट हुई है। सर्वज्ञ और पूर्ण आनन्द की दशा प्राप्त है, उसे किसी भी अपेक्षा से कोई भी शब्द लागू पड़ता हो तो पाड़ो परन्तु ऐसी दशा जहाँ नहीं, उसे कोई दूसरा कह दे कि यह ब्रह्मा-विष्णु, ऐसा नहीं है।

इसी प्रकार यहाँ सम्यग्दर्शन बिना चारित्र हो, क्रियाकाण्ड का बाहर (का चारित्र हो) वह (वास्तविक) चारित्र तो हो नहीं, तथापि उसे चारित्रवन्त कहना। साधन कहा है, कि इससे धीरे-धीरे सब प्राप्त होगा वह तो मूल में से भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं। उसका मूल ही खाया गया है। मूल में कीड़े पड़े हैं। समझ में आया? पक्का भ्रष्ट है। कहो, समझ में आया इसमें?

जड़ उखड़ जाने पर शाखा आदि कैसे होंगे? उसी प्रकार धर्म का मूल दर्शन जानना। जैनदर्शन का वीतरागी भाव मुनिपने का पूरा,... उन सबका मूल तो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र कुछ नहीं हो सकते। ओहो! वापस इसमें कोई अपने दोष का बचाव करे कि हमारी श्रद्धा तो पक्की है परन्तु जरा सा दोष लगता है, वह तो स्वच्छन्दी है। समझ में आया? यहाँ तो सम्यग्दर्शन है, उसका गुण कितना है? और अकेले क्रियाकाण्ड के व्रत पाले, उसमें नुकसान कितना है, श्रद्धा से भ्रष्ट है इसलिए, उसका अन्तर बताया है। समझ में आया? यह कहा है न, नहीं? प्रवचनसार में टीका में...

अपने समकित तो है, दूसरे दोष भले लगें। आधार कोई दूसरा होवे, आता है। दूसरे सब दोष हों तो क्या बाधा? ऐसा नहीं मानना। मानना तो बराबर मानना पड़ेगा। जितने दोष हैं, वे दोष ही हैं। समझ में आया? ऐसे दोष को दोषरूप से स्वीकार नहीं करेगा तो उसका सम्यक्त्व भी नहीं रहेगा। उसमें आता है, भाई! प्रवचनसार में, नहीं? आता है। टीका में आता है। ऐसा नहीं मानना कि हमारे यह सम्यक्त्व तो है। चारित्र भले न हो और चारित्र में भले दोष लगें। समझ में आया? ....चरणानुयोग में है। संस्कृत टीका में है। ...खबर नहीं? प्रवचनसार में है या नहीं? यह जयसेनाचार्य की टीका, उसमें अन्दर कहीं है।... चारित्र नाम धरावे और कहता है कि हमारे दोष होवे तो... अधःकर्मी आदि का क्या? इतना क्या है? ऐसा नहीं। समझ में आया? अभी हाथ नहीं होता। बड़ा समुद्र है। इस ओर के पृष्ठ पर है। इस ओर, चरणानुयोग में है। जयसेनाचार्य की टीका में है। पढ़ा था।....

यहाँ तो आचार्य महाराज सम्यग्दर्शन का जोर है जहाँ, वहाँ कदाचित् चारित्र वर्तमान में न पालन करता हो और चारित्र हो तथा छूट गया हो तो भी वह चारित्रवन्त है, ऐसा नहीं मानता, तब सम्यग्दर्शन रहा न? समझ में आया? चारित्र नहीं है और चारित्र माने, तब तो सम्यक्त्व भी कहाँ रहा? यह धर्म का मूल तो सम्यग्दर्शन है। वह मूल सुरक्षित होवे, फिर भले कहते हैं पत्ते-बत्ते हरे रहें, वे सूख जाएँगे। यहाँ तो ऐसा लेना है न। सम्यग्दर्शन...

गाथा-४

अब, जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं और शास्त्रों को अनेक प्रकार से जानते हैं तथापि संसार में भटकते हैं – ऐसे ज्ञान से भी दर्शन को अधिक कहते हैं –

सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव।।४।।

सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि।
आराधना विरहिताः भ्रमंति तत्रैव तत्रैव।।४।।

सम्यक्त्व रत्न–विहीन बहुविध शास्त्र जाने पर सदा।
आराधना विरहित भटकता इसी भव में वह सदा।।४।।

अर्थ – जो पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्न से भ्रष्ट है तथा अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं, तथापि वह आराधना से रहित होते हुए संसार में ही भ्रमण करते हैं करते हैं। दो बार कहकर बहुत परिभ्रमण बतलाया है।

भावार्थ – जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं और शब्द, न्याय, छन्द, अलंकार आदि अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं तथापि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपरूप आराधना उनके नहीं होती; इसलिए कुमरण से चतुर्गतिरूप संसार में ही भ्रमण करते हैं– मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते; इसलिए सम्यक्त्वरहित ज्ञान को आराधना नाम नहीं देते।

गाथा-४ पर प्रवचन

अब, जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं और शास्त्रों को अनेक प्रकार से जानते हैं... देखो! अब ज्ञान लिया है। पहले चारित्र का लिया। **तथापि संसार में भटकते हैं – ऐसे ज्ञान से भी दर्शन को अधिक कहते हैं –**

सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव।।४।।

अर्थ – जो पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्न से भ्रष्ट है... अन्तर के स्वरूप की है!

चिह्न किया है। नीचे लक्ष्य कहते हैं... चारित्र नहीं और चारित्र माने कि हमारे चारित्र नहीं है परन्तु हमारे श्रद्धा में तो दिक्कत नहीं न, परन्तु चारित्र माना कहाँ कि श्रद्धा में दिक्कत है (ऐसा आवे) ? समझ में आया ? चारित्र नहीं और चारित्र माने। फिर कहते हैं कि हमारे सम्यग्दर्शन तो पक्का है न ? अध:कर्मी आदि दोष चाहे जैसे हों, उसमें हमारे क्या दिक्कत है ? परन्तु तूने चारित्र माना है, वह दोष अधिक है। अर्थात् सम्यग्दर्शन भी नहीं है। ऐसी बात !

यहाँ तो आत्मा का दर्शन और भान है और चारित्र वर्तमान नहीं है। तथा (चारित्र) था तो वह गिर गया है, तो वह फिर से ग्रहण करेगा। भान है न, हाथ में है न सदा। समझ में आया ? चारित्र से भ्रष्ट हुआ, इसलिए दर्शन से भ्रष्ट होता है, ऐसा नहीं है। दोनों के गुण की दशा अलग है, ऐसा यहाँ बताते हैं। आहाहा ! जरा सूक्ष्म बात है। चारित्र से भ्रष्ट हो, इसलिए दर्शन से भ्रष्ट हो जाए, ऐसा नहीं है। राग-द्वेष करता है चारित्र का, वह कहीं सम्यग्दर्शन को दोष नहीं करता। समझ में आया ? यह पंचाध्यायी में बहुत लिया है। दो आँख का दृष्टान्त लिया है। एक आँख बिगड़ गयी, इसलिए दूसरी आँख बिगड़ जाए और न दिखायी दे, ऐसा है ? इसी प्रकार चारित्र बिगड़ गया, इसलिए समकित बिगड़ गया, ऐसा है ? हें ? मूल अन्तर्दृष्टि और सम्यग्दर्शन का विषय, उसका जो जोर, उसका जो मूल चाहिए, वह नहीं है, इसके लिए यह सब जोर दिया है। बाहर के आचरण और बाहर की प्रवृत्ति के जोर से तुम ऐसा मान बैठो कि हम जैनदर्शन में कुछ हैं, ऐसा नहीं है। मूल में से भ्रष्ट हुए और फिर कहे, (हम जैनदर्शन में) हैं। ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

जो पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्न से भ्रष्ट है... देखो ! यहाँ **रयण** आया। **सम्मत्तरयणभट्ठा** पहले में समुच्चय था। दंसणभट्ठा। समकितरूपी रत्न। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द, उसके सन्मुख की अनुभवसहित की निर्विकल्प प्रतीति, ऐसा सम्यग्दर्शनरत्न, उससे जो भ्रष्ट है, उसे हाथ में कंकड़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? **तथा अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं,...** बहुत शास्त्र। पहले में चारित्र का था, यहाँ ज्ञान की बात है। बहुत शास्त्र पढ़े। नव पूर्व तक पढ़ जाए, लो न ! नौ पूर्व पढ़ते हैं न ? नौ पूर्व पढ़े, तो क्या हुआ ? नौ पूर्व में कितना (आता है) ? ओहोहो ! एक आचारांग में अट्ठारह हजार पद, एक-एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक... पूर्व का भाग। ...अभव्य भी

नौ पूर्व पढ़ता है। अभव्य भी नौ पूर्व पढ़ता है। उसमें कितना पठन! ओहोहो! परन्तु वह क्या? अन्तर आत्मा वह ज्ञान—परलक्ष्यी ज्ञान से भी भिन्न है। समझ में आया? राग से भिन्न है परन्तु ऐसा जो परलक्ष्यी ज्ञान है, उससे चैतन्य भिन्न है। ऐसी श्रद्धा नहीं और अकेला यह ज्ञान वर्तता है, यह कहते हैं कि बहुत प्रकार से शास्त्र को जाने, तर्क-वितर्क आदि बहुत प्रकार के शास्त्र में प्रवीण हो, **तथापि वह आराधना से रहित होते हुए संसार में ही भ्रमण करते हैं...** उन्हें आत्मा की आराधना नहीं है। आराधना तो आत्मा का सम्यग्दर्शन और अनुभव करे, तब आराधना शुरु होती है। समझ में आया? ....जैसी हो वैसी बात आचार्य कहते हैं। उसमें कुछ पक्षपात नहीं है। हमारे दिगम्बर के भी शास्त्र के बहुत पढ़नेवाले हों, समकित भले न हो तो भी उसे ज्ञान होगा? नहीं, (नहीं होगा)।

जिसने स्वद्रव्य का आश्रय लेकर अन्तर में सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया और प्रगट करने का अन्तर्मुख का प्रयत्न भी नहीं है और अकेले शास्त्र पढ़ा हो तो वह आराधनारहित है, वह आराधक नहीं है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य है। समझ में आया? पुण्य न करना, पाप न करना तो करना क्या? ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं, लो! ऐई! ...पुण्य भी नहीं करना और पाप भी नहीं करना तो हमें करना क्या? स्वभाव सन्मुख दृष्टि करना। शुभभाव जहाँ आवे, वहाँ कहे, शुभभाव नहीं, धर्म नहीं, धर्म नहीं। इसलिए ऐसा कहे, होवे वह अलग बात है परन्तु उनके ऊपर की दृष्टि और वह धर्म, वह वस्तु करनेयोग्य नहीं है। शुभभाव तो रहेंगे, जब तक पूर्ण न हो (तब तक) रहेंगे। समझ में आया?

स्वभाव, स्वभाव में से राग जो था, वह चारित्रगुण के विपरीत का अंश था और स्वभाव तो अनन्त-अनन्त गुण का स्वभाव, ऐसा मेरा स्वभाव है। समझ में आया? यह नहीं करना तो फिर जाना कहाँ? महा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता इत्यादि महास्वभाव है। अकेला ज्ञानस्वभाव है, उसमें भी कहाँ है। समझ में आया? अनन्त स्वभाव, जिसका स्वभाव है, जिसकी शक्ति है, उसकी हद कैसे होगी? ऐसा जो बेहद एक-एक गुण का स्वभाव, ऐसे अनन्त गुण के स्वभाव का रूप, वह द्रव्यस्वभाव। उसमें दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि अन्यमत के बहुत शास्त्र पढ़ा हो, जैन के बहुत शास्त्र पढ़ा हो, लो! यह इसमें आया था या नहीं? यह तो अन्यमत के बहुत पढ़ा हो और उसमें ऐसा है,

जैन में ऐसा है, अमुक में ऐसा है। भगवान का मार्ग बहुत पुराना है। जैनशास्त्र में क्या, परन्तु अन्य में भी कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जैनधर्म कहना किसे?

मुमुक्षु : श्रद्धा तो होवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। श्रद्धा का भान कहाँ है? इसीलिए तो यहाँ कहते हैं, बहुत शास्त्र पढ़ने में यह भी साथ आ गया। अन्दर लिखा है, देखो! अर्थ में शब्द लिखेंगे। **बहुविहाइं सत्थाइं।** बहुत प्रकार के कहे न? जैनशास्त्र, दूसरे शब्दशास्त्र, न्यायशास्त्र, छन्द, अलंकार आदि। अन्यमति के भी अमुक में ऐसा कहा है, अमुक में ऐसा कहा है, अमुक में ऐसा कहा है। है? अन्दर शब्द है, देखो!

वह आराधना से रहित होते हुए संसार में ही भ्रमण करते हैं... शास्त्र के जानपने का क्षयोपशमभाव, महाव्याकरण के पूरे... ऐ.. पण्डितजी! यह बड़े व्याकरण के कैसे? खां। कैसे कहलाते हैं? व्याकरणाचार्य, प्रोफेसर। ऐसे जैनशास्त्र के शब्द करने में भी व्याकरण लगाकर बराबर ऐसे शब्द करे, ऐसे अर्थ करे, परन्तु कहते हैं कि उस ज्ञान से रहित, ऐसा जो ज्ञान है, उससे रहित। अकेला चैतन्य भगवान, उसकी प्रतीति और अनुभव में श्रद्धा नहीं तो वह सब शास्त्र के पढ़नेवाले भटकनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

दो बार कहकर बहुत परिभ्रमण बतलाया है। देखो! है न? **भमंति तत्थेव तत्थेव... तत्थेव** अर्थात् जहाँ है संसार में वहीं के वहीं। वहीं के वहीं। चार गति, नरक और निगोद। आत्मा के सम्यक् तत्त्व के भान बिना अकेले शास्त्र पढ़े तो भी कहते हैं कि नरक और निगोद में **तत्थेव तत्थेव**। समझ में आया? अलग बात है, भाई! ...यहाँ तो इन सबका फल बताते हैं। यहाँ है, यहाँ है... क्या है परन्तु यह? भगवान का स्मरण किया, भक्ति की, पूजा की, दया की, दान किया, छह परवी ब्रह्मचर्य पालना इसका सब फल यहाँ है। कहा, उसका फल अर्थात् यह भटकने का, भटकेगा। जहाँ भटकता है, वहाँ भटकेगा। वहाँ का वहीं रहेगा। **तत्थेव तत्थेव** आया न? **तत्थेव तत्थेव** वहाँ का वहीं, जहाँ है, वहाँ

का वहीं। मिथ्यात्व में है और यह सब शास्त्र पढ़ा परन्तु सम्यग्दर्शन क्या है, उसका भान नहीं होता और श्रद्धा से भ्रष्ट है, **सम्मत्तरयणभट्ठा** आहाहा! समझ में आया? पहले में चारित्र भ्रष्ट की बात की, यहाँ शास्त्र पढ़ा, तथापि सम्यक्त्वरत्न से भ्रष्ट है, वह भी आराधना **विरहिया** भगवान आत्मा आराधक वह ज्ञान की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, स्वरूप का अन्तरसन्मुख में आराधन अर्थात् सेवन करना, उससे जो **विरहिया** रहित है, वह **भमंति तत्थेव तत्थेव** वह चार गति में भटकेगा। ऐसी है, भाई! कहो, समझ में आया?

भावार्थ – जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं... लो, इसमें यह आया, पहले में भी ऐसा आया था। **जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं...** जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं... है न पूरा? समझ में आया? वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ दर्शन–जैनदर्शन, उन्होंने देखकर जाना हुआ सर्वज्ञ मार्ग। ऐसे मार्ग से जो भ्रष्ट है **और शब्द,...** ऐसे व्याकरण और व्याकरण... हमने तो देखा संस्कृत पानी के पूर जैसी आवे। पानी का पूर चलता हो न? ऐसी वाणी व्याकरण की बोले। उसमें धर्म क्या आया? समझ में आया? मेंढ़क को व्याकरण और संस्कृत का कुछ ज्ञान नहीं था, तथापि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। वह आत्मा से होता है, कहीं बाहर से नहीं होता – ऐसा कहते हैं। यह शब्द का ज्ञान।

न्याय,.. लो। ऐ.. कस्तूरचन्दजी! न्याय.. न्याय..। क्या कहलाता है? अष्टसहस्त्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड, श्लोकवार्तिक, ये सब न्याय के (शास्त्र) पढ़े परन्तु यह आत्मा का स्वभाव, उस सन्मुख की दृष्टि नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस न्याय से यह बात है। न्याय का सागर भगवान आत्मा अकेले सम्यग्ज्ञान का सागर है। उसकी दृष्टि और सम्यग्दर्शन नहीं, उसे आराधन नहीं करता और ऐसे में रुक गया और उसमें ज्ञान मानता है। कितने ही तो उसी और उसी में रुक गये। मोक्षमार्गप्रकाशक में... बीस वर्ष तक संस्कृत और व्याकरण पढ़ा।... सब बात पड़ी रही। बीस–बीस वर्ष तक पढ़े। संस्कृत और व्याकरण, यह और वह। ...आत्मा अन्तर इस जानपने के भाव से भी भिन्न चीज़ है, वह जानपना इस प्रकार का। ऐसा जिसे आत्मदर्शन, आत्मा का अन्तर आराधन, सेवन नहीं और उससे विपरीत है, वह ऐसे न्याय पढ़े (तो भी वह संसार में भटकता है)। छन्द। छन्द।

छन्द, अलंकार... आता है न... **अलंकार आदि...** आदि में सब आता है। देखो! जैन के शास्त्र और अन्य के शास्त्र। **अनेक प्रकार के शास्त्रों को...** देखो! पाठ में अनेक प्रकार है न? **बहुविहाइं** बहुत प्रकार के शास्त्र पढ़े परन्तु मूल आत्मा रह गया। धवल... जयधवल पढ़े। सोलह-सोलह, अठारह, बारह-बारह पुस्तकों की एक पुस्तक। सोलह भाग पढ़-पढ़कर पढ़े परन्तु वह क्या? उसमें कहाँ ज्ञान था? आहाहा! आत्मा अन्तर अखण्डानन्द प्रभु पूर्ण शुद्ध चैतन्य का ज्ञान नहीं और प्रतीति-अनुभव नहीं, वह ज्ञान बाह्य में तो भ्रष्ट है। आहाहा!

अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं, तथापि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपरूप आराधना उनके नहीं होती;... लो! ऐसा करे तो भी ज्ञान की आराधना नहीं, ऐसा कहते हैं। ज्ञान का आराधन तो आत्मा ज्ञान की मूर्ति प्रभु, अकेला ज्ञानस्वभावी परमात्मा, उसके सन्मुख का ज्ञान हो, वह ज्ञान का आराधन है। समझ में आया? ज्ञानाचार, आते हैं न आठ? व्यवहार। पालन करो और यह करो और वह करो। **इसलिए कुमरण से चतुर्गतिरूप संसार में ही भ्रमण करते हैं..** यह बाहर के शास्त्र आदि का जानपना। बहुत लिया, अनेक प्रकार के। अन्तरस्वभाव चैतन्य भगवान की प्रतीति और अनुभव का ज्ञान नहीं, वह स्व की आराधना नहीं करता, इसलिए ऐसा ज्ञानवाला भी मरकर, कुमरण करके, बालमरण से मरकर चतुर्गति संसार में (भ्रमण करता है)। देखो! यहाँ तो चारों ही गतियाँ ली हैं। नरक भी लिया है। चतुर्गति नरक में और ऐसे देव में, परन्तु वे तो चारों ही दु:ख है न? **कुमरण से चतुर्गतिरूप संसार में ही भ्रमण करते हैं..** चार गति के दु:खों में परिभ्रमण करेंगे। समझ में आया?

जिसे स्वदृष्टि नहीं हुई, स्वदृष्टि का भान अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं है और ऐसे अकेले शास्त्र पढ़-पढ़कर काल गँवाते हैं, कहते हैं वे कुमरण से मरकर नीचे जाएँगे, चार गति में जाएँगे। फिर भले कोई देव हो। उसका आया न इसमें? देव हो वह भी बालमरण है। अज्ञान में मरकर देव में जाएगा, वहाँ से फिर से पशु में जाएगा, वहाँ से फिर से निगोद में जाएगा। ऐसा है। समझ में आया? इन्होंने पाँच हजार और पाँच लाख श्लोक की पुस्तक बनायी। इतने अक्षर और इनकी महिमा लोग करते हैं। ...पुस्तक बनायी। नहीं कहते? हमारे गुरु ने पाँच लाख के अमुक बनाये, अमुक इतने लाख के बनाये, ऐसा कहते हैं।

पुस्तक बनाते हैं या नहीं ? व्याकरण के शब्दों के यह... करके, अमुक करके। उनके शिष्य महिमा करते हैं। इतनी पुस्तकों के इतने श्लोक। परन्तु उसमें क्या हुआ ? आहाहा! ...सिद्धान्त को माननेवाला। ...आहाहा!

अरे! भगवान! तेरा पता नहीं लिया और तेरे स्वरूप की दृष्टि का अनुभव नहीं, वह कहते हैं बाहर के ज्ञान का अहंकार करके नीचे जाएगा। मूल तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे बाहर के पठन की, व्याकरण की और संस्कृत की बड़ी-बड़ी पुस्तकें बनावे, पाँच-पाँच लाख की, सात-सात लाख की, दस-दस लाख श्लोक। इन्होंने तो सात लाख श्लोक का ग्रन्थ बनाया परन्तु क्या है ? धूल बनाया। करोड़ का बनावे तो उसमें आत्मा को क्या है ? रजकण, रजकण से बने, उसमें विकल्प / राग था, वह विभाव था। उसमें आत्मा को क्या लाभ हुआ ? पण्डितजी! इतने शास्त्र बनावे तो ? समयसार बनावे। लो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं हुआ, वह तो विकल्प था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे नहीं। वह तो स्वभाव के आश्रय से प्राप्त हुए, ऐसा कहा। हमारी अशुद्धता मिट जाओ। उस काल में हमारा लक्ष्य (स्वरूप के ऊपर) है। विकल्प और पर के ऊपर नहीं। इसकी टीका करने से अशुद्धता मिट जाओ, शुद्धता की प्राप्ति होओ – ऐसा यह करते-करते विकल्प से, ऐसा नहीं। उस काल में हमारा दर्शन का जोर द्रव्य के ऊपर वर्तता है, इससे उस काल में अस्थिरता टलकर शुद्धता होओ। आहाहा! इसमें भी विवाद उठाते हैं। देखो! इससे लाभ मानते हैं। आचार्य भी कहते हैं, टीका करते-करते धर्म (होता है)। अरे! भगवान! आहाहा! ऐसा यह पठन किस प्रकार का ?

आनन्द के सम्यक् का भान न हो तो उसकी गति कहाँ रहेगी ? राग और पठन के अहंकार में रहेगी। बालमरण करके कहीं गति में जाएगा। मोक्ष नहीं होगा, ऐसा कहा है न! **भमंति तत्थेव तत्थेव** वहीं का वहीं संसार में रहेगा। मुक्ति नहीं होगी। **मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते;...** मोक्ष नहीं होगा। **इसलिए सम्यक्त्वरहित ज्ञान को आराधना नाम नहीं देते।** लो, सम्यग्दर्शन, अन्तर की अनुभव प्रतीति। भगवान आत्मा की श्रद्धा, उसकी श्रद्धा

बिना ज्ञान की आराधना नाम नहीं कहते। ऐसे अकेले जानपने को आराधन कहते हैं, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! ऐसी बात है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली गजब शैली है!

मुमुक्षु : कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। कठिन कहाँ? जो है ऐसा है। वस्तु ही वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी श्रद्धा और ज्ञान नहीं तथा यह सब अकेला ज्ञान का जानपना किया, कहते हैं तू शरण कहाँ लेगा? तू मरते हुए शरण कहाँ लेगा? शरण तो अन्तर में है। वहाँ तो दृष्टि की नहीं और यहीं का यहीं शरण लेकर पड़ा है। कुमरण होगा, बालमरण होगा। आया न अन्दर? कहा न! कुमरण करेगा। कुमरण होगा – ऐसा कहते हैं, चार गति में जाएगा। भले देव में जाए तो भी कुमरण, बालमरण है। आहाहा!

मुमुक्षु : समाधिमरण नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ...समाधिमरण हो गया है, अमुक, अमुक और .... देखो! यह सब मानते नहीं। ...ईश्वर का अवतार हुआ, देखो यह! गप्प मारते हैं। ईश्वर का कहाँ अवतार था वहाँ? अब गाँव-गाँव में गप्प मारते हैं। यह सुरेन्द्रनगर धूल भी नहीं। कहते हैं, मारी थी, बहुत जगह यह लोग मारते हैं। ऐसा भगवान आत्मा आनन्द है, उसकी वर्षा आयी उसे? बाहर में धूल में क्या? अनन्त बार देव हुआ और देव ऐसे केसर भी बरसाई। उसमें आत्मा को क्या हुआ। यह तो मिथ्या है। कोई व्यन्तर आकर करे भी सही, लो न। होता है। ...उसमें धर्म क्या? उसमें धर्म की महिमा क्या आयी? धूल भी नहीं।

यहाँ तो कहते हैं **इसलिए सम्यक्त्वरहित ज्ञान को आराधना नाम नहीं देते।** आहाहा! वीतराग का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागदशा और जिनमुद्रा नग्नदशा, ऐसे मार्ग की श्रद्धा बिना, ऐसे मार्ग की श्रद्धा अर्थात् आत्मा की श्रद्धा, ऐसा। ...आत्मा की पर्याय निर्मल वीतरागी... समझ में आया? ऐसे मार्ग की अन्तरश्रद्धा बिना.. **आराधना नाम नहीं देते।** ज्ञान को आराधता है न? अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, ऐसा है। आता है न? भाई! ...परन्तु सम्यग्दर्शन बिना अभीक्ष्ण उपयोग किसे कहना? अब सुन न! समझ में आया? हमारे में आता है, अभीक्ष्ण उपयोग। पूरे दिन... परन्तु मूल चीज़ है, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? वह अभीक्ष्ण उपयोग कहलाता ही नहीं। अभीक्ष्ण उपयोग तो उसे कहते हैं कि जो विकल्प से भिन्न पड़कर आत्मा का भान है, स्वभावसन्मुख जोर है, उसमें यह

विकल्प बारम्बार समझने की ओर का होता है। उसमें से पुण्य बँध जाता है परन्तु उसमें इस विकल्प से बन्ध है। समझ में आया? उसमें लोग महिमा करते हैं। **आराधना नाम नहीं देते।** दो गाथाओं में दो बातें कही हैं। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र से मुक्ति नहीं। ...इसलिए वह ....यहाँ सम्यक्त्व से भ्रष्ट है। उसे रत्न कहा। ऐसा कहा। और ऐसे ज्ञान का अकेला सेवन करता है, वह आराधक नहीं है, विराधक है; इसलिए कुमरण करके चार गति में भटकेगा। यह कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-५

अब कहते हैं कि जो तप भी करते हैं और सम्यक्त्वरहित होते हैं उन्हें स्वरूप का लाभ नहीं होता –

सम्मत्तविरहिया णं सुठ्ठू वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं।।५।।

सम्यक्त्वविरहिता णं सुष्ठु अपि उग्रं तप: चरंतो णं।
न लभन्ते बोधिलाभं अपि वर्षसहस्रकोटिभि:।।५।।

सम्यक्त्व विरहित सहस कोटी वर्ष तक भी विधीवत्।
बहु उग्र तप आचरे पर बोधि नहीं पाता नियत।।५।।

अर्थ – **जो पुरुष सम्यक्त्व से रहित हैं, वे सुष्ठु अर्थात् भलीभांति उग्र तप का आचरण करते हैं, तथापि वे बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जो अपना स्वरूप है उसका लाभ प्राप्त नहीं करते; यदि हजार कोटि वर्ष तक तप करते रहें, तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ गाथा में दो स्थानों पर 'णं' शब्द है, वह प्राकृत में अव्यय है, उसका अर्थ वाक्य का अलंकार है।**

भावार्थ – **सम्यक्त्व के बिना हजार कोटि वर्ष तप करने पर भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ हजार कोटि कहने का तात्पर्य उतने ही वर्ष नहीं समझना, किन्तु काल का बहुतपना बतलाया है। तप मनुष्य पर्याय में ही होता है, और मनुष्यकाल भी थोड़ा है, इसलिए तप के तात्पर्य से यह वर्ष भी बहुत कम कहे हैं।।५।।**